दैनिक जागरण

Date: 30-03-18

जानिए कैसे तय होते हैं अल्पसंख्यक, कानून से तय नहीं होता यह दर्जा

फैजान मुस्तफा,[लेखक नलसार विधि विश्वविद्यालय, हैदराबाद के कुलपति हैं]

अल्पसंख्यकों का संरक्षण किसी भी सभ्यता का खास पहलू माना जाता है। इसे लोकतांत्रिक एवं **बहुलतावादी** राजनीति का आवश्यक अंग भी माना गया है। वहीं एक हालिया **घटनाक्रम** में देश के मुख्य न्यायाधीश की अगुआई में सुप्रीम **कोर्ट** की तीन सदस्यीय पीठ ने जम्मू-कश्मीर राज्य में हिंदुओं को **अल्पसंख्यक** दर्जा देने से इन्कार कर दिया। शीर्ष अदालत ने **मुस्लिम** बहुल राज्य में अल्पसंख्यक आयोग के गठन को लेकर भी अपनी **अक्षमता** जाहिर की। जम्मू-कश्मीर के विशेष संवैधानिक दर्जे को देखते हुए पीठ ने राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग के दायरे का राज्य में **विस्तार** करने को लेकर भी अपनी असमर्थता व्यक्त की। इससे महबूबा मुफ्ती सरकार भले ही कुछ राहत की सांस ले रही हो, लेकिन मुझे यही लगता है कि अव्वल तो इस याचिका की कोई जरूरत ही नहीं थी और दूसरे तमाम ऐसी मिसालें हैं, जिनसे अदालत दूसरे नतीजे पर भी पहुंच सकती थी।

अल्पसंख्यक दर्जा कानून या अदालत से तय नहीं होता है

यह एक गलत धारणा है कि किसी समुदाय का अल्पसंख्यक दर्जा कानून या अदालत से तय होता है। इस मसले को अंतरराष्ट्रीय और भारतीय कानूनों द्वारा पूरी तरह पुष्ट किया गया है। 1930 की शुरुआत में अंतरराष्ट्रीय न्यायालय ने ग्रेसो-बुल्गारिन समुदाय के मामले में स्पष्ट किया था कि अल्पसंख्यक **दर्जा** महज आबादी की संख्या से तय नहीं होता। इसके **लिए** साझा धार्मिक, नस्लीय भाषाई चलन मायने रखते हैं जिन्हें कोई समूह परंपराओं, शिक्षा और युवाओं के सामाजीकरण के **जरिये** सहेजकर रखना चाहता है। इस अदालत ने आदेश दिया था कि किसी समुदाय की पहचान किसी कानून पर निर्भर नहीं है। अगर कोई समुदाय तमाम सांस्कृतिक पहलुओं पर ऐसा समूह बनाता है जो उन्हें दूसरों से अलग दर्शाता हो और यदि वह समूह उन सांस्कृतिक **प्रतीकों** को सहेजना चाहता हो तो यही पहलू उन्हें अल्पसंख्यक दर्जा दिलाने के लिए काफी है।

कई राज्यों में हिंदू भी अल्पसंख्यक दर्जा हासिल करने की पात्रता रखते हैं

एन एम्माद (1998) मामले में सुप्रीम कोर्ट ने भी यही माना था कि अल्पसंख्यक दर्जे के लिए राज्य की **मान्यता** की कोई जरूरत नहीं। भारतीय संविधान में भी 'अल्पसंख्यक' शब्द का केवल चार जगह ही उल्लेख है। हालांकि संविधान इसे उचित रूप से परिभाषित नहीं करता। सुप्रीम कोर्ट का इस पर यही रुख रहा है **कि** अल्पसंख्यकों का निर्धारण जनसंख्या के आधार पर होगा और वह भी राज्य विशेष पर निर्भर करेगा। केरल शिक्षा विधेयक मामले (1957) के बाद से ही इस नीति में कोई बदलाव देखने को नहीं मिला। इसके बाद शीर्ष अदालत की 11 सदस्यीय पीठ ने टीएमए पई फाउंडेशन (2002) मामले में स्पष्ट किया कि '**अल्पसंख्यक**' शब्द की किसी उचित परिभाषा के अभाव में किसी भी राज्य का ऐसा समूह जो कुल आबादी में पचास फीसद से कम हो, अपनी सामुदायिक, धार्मिक या भाषाई परंपराओं के आधार पर अल्पसंख्यक **अधिकारों** का हकदार हो सकता है। इस तरह से नगालैंड, **मिजोरम**, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर, जम्मू-कश्मीर और पंजाब में **संख्या** में कम होने के लिहाज से हिंदू भी अल्पसंख्यक **दर्जा** हासिल करने की पात्रता रखते हैं।

इलाहाबाद हाईकोर्ट ने यूपी में मुसलमानों को अल्पसंख्यक नहीं माना

डीएवी कॉलेज (1971) के मशहूर मामले में सुप्रीम कोर्ट ने खुद पंजाब में हिंदुओं को अल्पसंख्यक माना। इलाहाबाद हाईकोर्ट के जस्टिस एसएन श्रीवास्तव ने उत्तर प्रदेश में मुसलमानों को आश्चर्यजनक रूप से अल्पसंख्यक नहीं माना। बाल पाटिल (2005) मामले में धार्मिक अल्पसंख्यक के तौर पर किसी समुदाय की पहचान को लेकर सुप्रीम कोर्ट ने हैरतअंगेज रूप से बड़ा प्रतिगामी रुख अपनाया। उसके कुछ विचार हमारे संवैधानिक दर्शन के उलट दक्षिणपंथी विचारधारा से कहीं अधिक मेल खाते हैं।

बहुसंख्यक-अल्पसंख्यक जैसे खांचे समाप्त होने चाहिए: सुप्रीम कोर्ट

सुप्रीम कोर्ट की तीन सदस्यीय पीठ ने असामान्य रूप से कहा कि संविधान निर्माताओं ने धार्मिक अल्पसंख्यकों की सूची तैयार करने के बारे में सोचा ही नहीं। पीठ ने यहां तक कहा कि आदर्श लोकतांत्रिक समाज में समानता के अधिकार को मूल अधिकार के तौर पर स्वीकार किया गया है, लिहाजा बहुसंख्यक-अल्पसंख्यक के साथ ही तथाकथित अगड़े और पिछड़े जैसे खांचों को भी समाप्त कर देना चाहिए। कालांतर में सुप्रीम कोर्ट ने अल्पसंख्यक आयोग को इस दिशा में कदम उठाने का निर्देश भी दिया कि वह इस भेदभाव को खत्म करके भारत की एकता और अखंडता को सुनिश्चित करने के उपाय करे।

जैन एक अलग धार्मिक अल्पसंख्यक हैं

इस तरह के फैसलों से हमारी अदालतों ने उन लोगों को एक तरह से वैधता प्रदान की जो एक देश-एक धर्म-एक कानून और एक भाषा जैसे नारे लगाते हैं। जहां तक जैन समुदाय का संबंध है तो जब संविधान के अनुच्छेद 25 में उन्हें हिंदू के तौर पर परिभाषित किया गया तो इस पर जैनों के विरोध के बाद पंडित नेहरू को लिखित रूप में स्पष्टीकरण देना पड़ा कि वे एक अलग धार्मिक अल्पसंख्यक हैं। एकीकरण में विशिष्ट धार्मिक, सांस्कृतिक और भाषाई पहचान के संरक्षण की आवश्यकता होती है। यह ध्यान रखना चाहिए कि हिंदुओं सहित सभी समुदाय धार्मिक के साथ-साथ भाषाई आधार पर अल्पसंख्यक अधिकार के हकदार हैं। भाषाई अल्पसंख्यक होने के नाते तमिल हिंदू तमिलनाडु के बाहर देश के किसी भी राज्य में तमिल माध्यम वाले अपने संस्थान स्थापित कर सकते हैं। इसी कारण कुछ राज्यों में हिंदू धार्मिक रूप से अल्पसंख्यक हैं।

भाषा के आधार पर देश विभाजित हुआ

भारत कई भाषाई राज्यों में विभाजित है। इन राज्यों का गठन उस क्षेत्र में प्रचलित भाषा बोलने वाले अधिसंख्य लोगों के आधार पर हुआ है। जैसे तमिलनाडु तमिल भाषा के आधार पर बना। यदि भाषाई अल्पसंख्यकवाद के मामले में पूरे भारत को एक पैमाना मानें तो तमिलनाडु के भीतर तमिल भाषी ही भाषाई अल्पसंख्यक माने जाएंगे। यह बहुत बड़ी विसंगति होगी। धार्मिक अल्पसंख्यक दर्जे के निर्धारण में सुप्रीम कोर्ट को असल में अपने पुराने फैसलों की ही समीक्षा करनी चाहिए। यह सच है कि अनुच्छेद 30 धार्मिक एवं भाषाई अधिकारों को सुनिश्चित करता है, लेकिन वह यह नहीं कहता कि धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यक दर्जे को राज्य के स्तर पर तय किया जाए जैसा कि शीर्ष अदालत ने अपने फैसलों में निर्णय दिया है। इन्हें राज्य के स्तर पर निर्धारित करने की जरूरत नहीं।

अल्पसंख्यक अधिकार सभी नागरिकों के लोकतांत्रिक अधिकारों से जुड़ा मसला है

अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम के तहत भारत सरकार पहले ही समूचे देश के लिए धार्मिक अल्पसंख्यकों को अधिसूचित कर चुकी है। बेहतर होगा कि हम टीएमए पई मामले में न्यायमूर्ति रूमा पाल के नजरिये पर गौर करें। उन्होंने दलील दी थी कि अल्पसंख्यक

पैमाने का निर्धारण ऐसे कानून के दायरे पर **किया** जाए, जिसके संरक्षण में यह दर्जा मांगा जा रहा हो। अल्पसंख्यक अधिकार सभी नागरिकों के लोकतांत्रिक अधिकारों से जुड़ा मसला है। यह कोई सांप्रदायिक समस्या नहीं है। **वास्तव** में एकरूपता नहीं, बल्कि विविधता ही भारत को बेहतर रूप से परिभाषित करती है।

जनसत्ता

Date: 29-03-18

खापों पर शिकंजा

संपादकीय

दूसरी जाति या धर्म में दो बालिगों की शादी को लेकर सर्वोच्च अदालत ने जो फैसला सुनाया है, वह **ऐतिहासिक** है। यह फैसला इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि अब खाप पंचायतों की मनमानी पर लगाम लग सकेगी। एक खाप के 'फैसले' के **खिलाफ** दायर जनहित याचिका पर दिए चौवन पेज के फैसले में सर्वोच्च अदालत ने साफ कहा कि दो बालिगों की मर्जी से की गई शादी में खाप पंचायत या किसी भी पक्ष का दखल गैरकानूनी है। इस मामले में न माता-पिता, न समाज और न ही कोई पंचायत दखल दे सकती है। अगर ऐसी शादी में कहीं कुछ गलत नजर आता है तो इसका फैसला करना कानून और अदालत का काम है, न कि किसी और का। प्रधान न्यायाधीश की अध्यक्षता वाले तीन सदस्यीय पीठ ने खाप **पंचायतों** को साफ-साफ चेताया है कि वे कानून हाथ में न **लें** और समाज की ठेकेदार न बनें। अदालत ने आन के नाम पर की जाने **वाली** हत्याओं (ऑनर किलिंग) को रोकने के लिए कानून बनाने की सिफारिश की है। जब तक कानून नहीं बन जाता तब तक अदालत के दिशा-निर्देश लागू रहेंगे, जिन्हें छह हफ्ते के भीतर लागू किया जाना है। अदालत ने सुधारात्मक उपाय और रोकथाम के कदम भी सुझाए हैं। उम्मीद की जानी चाहिए कि इनसे ऑनर **किलिंग** जैसी सामाजिक बुराई को रोकने में मदद मिल सकेगी।

सर्वोच्च अदालत का यह फैसला व्यक्ति की पसंद, उसकी आजादी और आत्मसम्मान को रेखांकित करता है। किसी की पसंद को सम्मान या आन के नाम पर कुचलने और उसे शारीरिक-मानसिक रूप से प्रताड़ित करने वाली घटनाएं समाज के लिए कलंक हैं। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के आंकड़े बताते **हैं** कि 2014 से 2016 के दौरान आन के नाम पर हत्या की दो सौ अट्ठासी वारदातें हुईं। बेतुके और बर्बर फैसले सुनाते वक्त खाप **पंचायतें** भूल जाती हैं कि उनसे ऊपर कानून की भी सत्ता है। एक जाति या गोत्र में शादी, प्रेम संबंध, अवैध संबंध, जमीनी विवाद जैसे मसलों पर कई बार खापों के फैसले सुन कर हैरत होती है। मसलन, मुंह काला करना, गांव में निर्वस्त्र घुमाना, पति-पत्नी को भाई-बहन **घोषित** कर देना, पीट-पीट कर मार डालना, ऐसा आर्थिक दंड लगाना जिसे भर पाना ही संभव न हो, सामाजिक बहिष्कार, जाति बाहर कर देना, गांव छोड़ने का हुक्म दे देना, आदि। इसलिए **खापों** की इस गैरकानूनी और मनमर्जी वाली व्यवस्था पर लगाम क्यों नहीं लगनी चाहिए? सुप्रीम कोर्ट के फैसले को लागू कराना सरकार की जिम्मेदारी है। अदालत ने साफ कहा है कि दूसरी जाति या धर्म में शादी करने वाले बालिगों की सुरक्षा की जिम्मेदारी पुलिस और **प्रशासन** की है।

अगर सर्वोच्च अदालत के दिशा-निर्देशों पर अमल नहीं होता है तो संबंधित अधिकारियों को खमियाजा भुगतना होगा। लेकिन सवाल है कि खापों से प्रशासन निपटेगा कैसे? यह एक बड़ी चुनौती है। हालांकि पिछले कुछ वर्षों में कई **खापों** ने दहेज, शादी-विवाह में फिजूलखर्ची और कन्याभ्रूण हत्या जैसी सामाजिक बुराइयों के खिलाफ मुखर पहल की है। अगर खापें ऐसे ही सकारात्मक कदम ऑनर किलिंग जैसी सामाजिक बुराइयों को खत्म करने के लिए भी उठाएं, तो इससे समाज में बड़ा बदलाव आ सकता है। यह कोई मुश्किल

काम नहीं है। लेकिन समस्या यह है कि खापों को राजनीतिकों का पूरा संरक्षण रहता है। कोई भी नेता अपनी जाति की खाप के खिलाफ मुंह खोलने की हिम्मत नहीं दिखा पाता है, क्योंकि उसे वोट खिसकने का डर सताता है। ऐसे में सरकार और प्रशासन की पहल के साथ-साथ खापों और इन्हें संरक्षण देने वाले राजनीतिकों को अपनी मानसिकता बदलने की जरूरत है!

THE HINDU

Date: 29-03-18

Curbing the khaps

EDITORIAL

The Supreme Court guidelines are welcome — but we need a strong law on 'honour' crimes

Many crimes committed in the name of defending the honour of a caste, clan or family may have their origin in India's abominable caste system, but there are other contributing factors as well. Entrenched social prejudices, feudal structures and patriarchal attitudes are behind what are referred to as 'honour killings'. While these cannot be eradicated overnight through law or judicial diktat, it is inevitable that a stern law and order approach is adopted as the first step towards curbing groups that seek to enforce such medieval notions of 'honour' through murder or the threat of murder, or ostracisation. It is in this context that the Supreme Court's strident observations against khap panchayats and guidelines to deal with them acquire significance. It is not the first time that the apex court has voiced its strong disapproval of khaps, or village assemblies that assume the authority to discipline what they deem behaviour that offends their notions of honour. Previous judgments have made it clear that the life choices of individual adults, especially with regard to love and marriage, do not brook any sort of interference from any quarter. In the latest judgment, a three-judge Bench headed by Chief Justice Dipak Misra has located the problem as one that violates the liberty and dignity of individuals, and something that requires preventive, remedial and punitive measures.

The High Courts of Punjab and Haryana and Madras have laid down guidelines to the police on creating special cells and 24-hour helplines to provide assistance and protection to young couples. The Supreme Court has now gone a step further and asked the police to establish safe-houses for couples under threat. The direction asking police officers to try and persuade khaps to desist from making illegal decisions may appear soft. But in the same breath, the court has also empowered the police to prohibit such gatherings and effect preventive arrests. How far it is feasible to videograph the proceedings of such assemblies remains to be seen, but it may be a deterrent against any brazen flouting of the law. The verdict is also notable for dealing with some points made often in defence of khap panchayats, rejecting outright the

claims that they were only engaged in raising awareness about permissible marriages, including inter-caste and inter-faith ones, and against sapinda and sagotra marriages. The court has rightly laid down that deciding what is permitted and what is not is the job of civil courts. While these guidelines, if they are adhered to, may have some salutary effect on society, the government should not remain content with asking the States to implement these norms. It should expedite its own efforts to bring in a comprehensive law to curb killings in the name of honour and to prohibit interference in the matrimonial choices of individuals.

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 29-03-18

खाप के खौफ से मुक्ति का रास्ता

रंजना कुमारी, निदेशक, सेंटर फॉर सोशल रिसर्च

खाप पंचायतों के संदर्भ में शीर्ष अदालत का मंगलवार को आया फैसला ऐतिहासिक महत्व रखता है। यह बताता है कि हर बालिग को, चाहे वह महिला हो या पुरुष, अपनी मरजी से **प्यार** करने और शादी करने का मौलिक अधिकार है। **इसमें** परिवार, खानदान या समाज का कोई व्यक्ति दखल नहीं दे सकता। अब यह कोई छिपा तथ्य नहीं है कि खाप पंचायतें प्यार और **शादी** पर किस कदर पहरे बिठा देती हैं। हरियाणा के कैथल में 2007 में हुए मनोज-बबली हत्याकांड की पड़ताल के दौरान मैंने खुद यह महसूस किया था। बेशक ये पंचायतें तमाम तरह के सामाजिक काम करने के दावे करती हों, पर असलियत में ये अनाप-शनाप **पाबंदियां** और कायदे ही थोपती हैं। महिलाएं फोन का इस्तेमाल नहीं कर सकतीं, उन्हें जींस पहनने का कोई अधिकार नहीं, वे **साइकिल** नहीं चलाएंगी जैसे फरमान अक्सर सुनाई दे जाते हैं। यदि 21वीं सदी के भारत की कोई सामाजिक या जातिगत पंचायत इस तरह के फैसले करती हो, तो उसकी रूढ़िवादिता का अनुमान सहज लगाया जा सकता है।खाप पंचायतें सिर्फ और सिर्फ संपन्न व धनाढ्य किसान परिवारों के मर्दों का जमावड़ा होती हैं। इनमें किसी गरीब व्यक्ति और महिला को कोई स्थान नहीं मिलता। अमूमन जाति के नाम पर समाज में इस तरह की संस्थाएं बनाई जाती हैं, जो गरीबों व वंचितों पर अत्याचार करने के सिवाय कुछ और नहीं करतीं। सबसे खतरनाक तथ्य यह है कि ये पंचायतें अपने फैसले से देश के कानून की भी खुली अवहेलना करती हैं।

खाप पंचायत का खौफ मैंने खुद चार-पांच साल पहले अनुभव किया है। मुझे खबर मिली थी कि **हरियाणा** के गुरुग्राम के नजदीकी गांव का एक शादीशुदा प्रेमी जोड़ा भागकर दिल्ली आया है। लड़का दलित जाति का था और लड़की माली **जाति** की। स्थानीय खाप पंचायत इस अंतरजातीय शादी के खिलाफ थी, इसलिए उस जोड़े ने अपनी जान बचाने के लिए गांव छोड़ना ही **मुनासिब** समझा था। हम उसे लेकर हौजखास थाने गए। मगर खाप पंचायत के लोग रात भर उस थाने को घेरकर बैठे रहे। इतना ही **नहीं**, उस जोड़े को चुपके से वहां से निकालकर जब उनकी मौसी के यहां **महरौली** पहुंचाया गया, तो वहां भी उन लोगों ने घेरा डाल दिया। वे मारने-काटने की धमकी दे रहे थे। कल्पना कीजिए,जब राजधानी दिल्ली **में** ये लोग ऐसा व्यवहार कर सकते हैं, तो फिर अपने क्षेत्र **में** किस हद तक दबाव बनाते होंगे। निश्चित ही गांव में उस परिवार का रहना **मुश्किल** हो जाता होगा, जिसका बच्चा अपनी मरजी से अंतरजातीय प्रेम विवाह करता है। जबकि हमारा संविधान हर बालिग को अपनी पसंद से जीवनसाथी चुनने का हक देता है।

इस तरह की संस्थाएं सिर्फ पितृसत्तात्मक समाज के हथियार हैं। इन्होंने हमेशा समाज में औरतों को दबाकर रखने का प्रयास किया है। आज भी वे बदलने को तैयार नहीं दिखतीं। कहीं ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता कि इन पंचायतों ने **औरतों** की शिक्षा, उनके स्वास्थ्य अथवा सामाजिक कुरीतियों को खत्म करने के **लिए** कोई ठोस प्रयास किया हो। बेशक एकाध अपवाद हैं, पर संपूर्णता में इन पंचायतों का चरित्र महिला-विरोधी ही है।सुप्रीम कोर्ट के फैसले से तीन अच्छी बातें निकलती साफ-साफ दिख **रही** हैं। पहली, अब विवाह एक तरह से हमारा मौलिक अधिकार बन गया है। **इसमें** अभिभावक, समाज, गुट, समूह या किसी को भी दखल देने का कोई हक नहीं है। दूसरी बात यह कि पहली बार ऐसे मामलों में **विवाहित** जोड़ों की सुरक्षा की जिम्मेदारी स्थानीय पुलिस व **प्रशासन** पर डाली गई है। और तीसरी बात, प्रेमी जोड़ों व उनके परिवार वालों को सुरक्षित घर दिए जाने का निर्देश दिया गया है। तीसरा **पक्ष** कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण है, क्योंकि ऐसे प्रेमी जोड़ों के लिए कहीं भी रहना खतरे से खाली नहीं होता। शीर्ष अदालत ने उचित ही उनकी निगरानी का निर्देश स्थानीय पुलिस कप्तान व डीएम को दिया है। बेशक **सुप्रीम** कोर्ट ने अभी गाइडलाइन जारी की है और कानून बनाने का काम केंद्र सरकार करेगी, मगर शीर्ष अदालत का फैसला कानून के समान ही होता है। हमारे न्यायिक ढांचे की यही **खासियत** है कि संसद कानून बनाए अथवा नहीं, पर सुप्रीम कोर्ट का फैसला कानून के तौर पर प्रभावी होता है।

कुछ समाज विज्ञानियों ने आशंका जताई है **कि** ताजा फैसला जमीन पर लागू भी हो सकेगा! उदाहरण के तौर पर वे दहेज कानून का जिक्र करते हैं। उनका कहना है कि आज भी अपने देश में हर साल आठ से दस हजार लड़कियां दहेज के नाम पर मार दी जाती हैं। मगर ताजा फैसले का एक महत्वपूर्ण पहलू सुप्रीम **कोर्ट** द्वारा ऐसे मामलों की जिम्मेदारी तय करना है। अगर कोई प्रेमी जोड़ा खाप पंचायत का शिकार बनता है, तो स्थानीय प्रशासन इसके लिए जिम्मेदार ठहराया जाएगा। इसलिए यह **उम्मीद** कर सकते हैं कि पुलिस-प्रशासन अब संजीदगी से ऐसे मामलों में **सक्रियता** दिखाएगा।एक उम्मीद हम सुप्रीम कोर्ट से भी पाल सकते हैं। संभव है कि आने वाले दिनों में शीर्ष अदालत एक कदम और आगे बढ़कर इस तरह की तमाम पंचायतों अथवा व्यवस्थाओं को **असांविधानिक** घोषित कर दे। अगर यह उम्मीद परवान चढ़ती है, तो फिर न तो ये पंचायतें बैठेंगी और न ही कोई उल-जुलूल फैसला हमारे सामने आएगा। सच भी यही है कि ये जमावड़े निजी स्वार्थ को पूरा करने के लिए किए जाते हैं। ऐसे दौर में, जब देश-दुनिया में **महिलाओं** को बराबरी का दर्जा दिए जाने के प्रयास गंभीरता से हो रहे हों और सामाजिक बदलावों के जरिए औरतों का सम्मान **सुनिश्चित** किए जाने की संजीदा कोशिश हो रही हो, तब यह अनिवार्य ही है **कि** खाप पंचायतें जैसी संस्थाएं सांवधानिक रूप से **अमान्य** घोषित कर दी जाएं। तभी समाज और संस्कृति में लैंगिक समानता का **प्रयास** सफल हो सकेगा।

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

Date: 29-03-18

Khap out

Supreme Court's order should enable the administration and police to move more effectively against these social assemblies

Editorial

On more than one occasion in the past two months, the Supreme Court has asked khap panchayats to keep out of the "fundamental issue of marriage between two consenting adults". "If an adult girl or boy gets into marriage, no khap, individual or no society can question them," the court had said in January. On

Tuesday, a three-judge bench of the court came down even more strongly against these modern-day avatars of traditional social assemblies. Disposing of a petition by the NGO Shanti Vahini, dating back to 2010, the court said that the activities of "the khap panchayats have to be stopped in its entirety". Acceding to the NGO's petition to rein in the khaps, the Court asked "the Parliament to come up with a suitable legislation" against these social assemblies. The court has prescribed a slew of steps, including the use of Section 144 of the Code of Criminal Procedure to prevent the gathering of khap panchayats. It has also laid down remedial and punitive measures, including providing security to the couple and their families and moving them to a safe house, to counter honour killings.

The court's intervention is significant given that in rural Haryana, and parts of western Uttar Pradesh, khaps are known to exercise more power than state agencies. The statutory panchayats in these areas have been reduced to agencies for executing civil works, while the khaps exercise sway over social matters, especially the enforcement of complex exogamous and endogamous conventions around marriage. Young people who marry in contravention of these norms are subjected to ostracism, humiliation and the use of force. Administrators and the police often hesitate to intervene in what they see as community matters — until an actual crime is committed. Despite several cases of khap-engineered violence in the past 10 years, successive governments in Haryana have been cagey in acting against these social assemblies.

In the past, khaps have been defiant of judicial interventions. In 2010, barely a few days after a Haryana sessions court took a strong view of honour killings, a khap mahapanchayat in Kurukshetra demanded that the Hindu Marriage Act be amended to ban endogamous marriages within the same village. More recently, in February, khap leaders asked the SC to desist from "interfering in traditional matters". The apex court has responded by asserting that the "right to liberty under the Constitution cannot be smothered by class honour". Its order should enable state governments to move decisively against the khaps.